ॐ नमः सिद्धेभ्य

श्री दिगंबर जैन आचार्य १०८ श्री
सूर्य सागर जी महाराज द्वारा
प्रणीत एवं संग्रहीत

आत्म बोध मार्तण्ड

ॐ नमः सिद्धेभ्य

श्री दिगंबर जैन आचार्य १०८ श्री
सूर्य सागर जी महाराज द्वारा
प्रणीत एवं संग्रहीत

आत्म बोध मार्तण्ड

ॐ नमः सिद्धेभ्य

श्री दिगंबर जैन आचार्य १०८ श्री सूर्य सागर जी महाराज
द्वारा प्रणीत एवं संग्रहीत

आत्म बोध मार्तण्ड

स्वर्गीय सेठ श्री पांथूलालजी पोरवाड़ की धर्मपत्नी
श्री बसंतीबाई की ओर से भेंट

प्रकाशक

ब्र. लक्ष्मीचन्द वर्णी
आचार्य १०८ श्री सूर्यसागर संघ
चातुर्मास कोटा

पौस कृष्ण प्रतिपदा
वीर निर्वाण सम्वत् 2477
विक्रम सम्वत् 2007

version : 001
First electronic version : 10 दिसंबर 2022

पौष कृष्ण द्वितीया , वीर निर्वाण सम्वत् 2549
भगवान मल्लिनाथ के ज्ञान कल्याणक के शुभ अवसर पर

यह digital version पौस कृष्ण प्रतिपदा वीर निर्वाण सम्वत् २४७७ को ब्र. श्री लक्ष्मीचन्द जी वर्णी द्वारा प्रकाशित प्रति का बनाया गया है।

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज द्वारा संग्रहीत एवं प्रणीत यह "आत्मबोध मार्तंड" जी सहजता से हार्ड कॉपी के रूप में अब अधिक कहीं उपलब्ध देखने में नहीं आता है, यदि कोई भव्य जीव इस ग्रंथ को प्रिंट करवाकर साधर्मी जनों को उपलब्ध करा पावें तो जिनवाणी की रक्षा और जैन धर्म की प्रभावना में अमूल्य योगदान रहेगा।

"आत्मबोध मार्तंड " जी की यह डिजिटल प्रति बनाने में अत्यधिक सावधानी रखी गई है किंतु अज्ञान वश, प्रमाद वश एवं अत्यंत अल्प बुद्धि के धारक मूढ़ मति होने से हमसे टाइपिंग संबंधी त्रुटियां होना अवश्य सम्भावी हैं। ज्ञानी जन सुधार कर पढ़ें और हम पर क्षमा भाव धारण करें ऐसा करबद्ध निवेदन है। साथ ही किसी भी प्रकार की त्रुटि एवं सुझाव के लिए हमें निम्न ईमेल पर सूचित करने की कृपा करें

infinitejainism@gmail.com

विषय सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
1	ग्रंथकर्ता का जीवन परिचय	i – iv
2	आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज के अन्य ग्रंथो की सूची	v – vii
3	वीर प्रार्थना	viii
4	मंगलाचरण	1
5	चेतन चौबीसी रत्नावली	7 – 9
6	निजानंद स्तोत्र	9 – 15
7	सामायिक चालीसा	15 – 23
8	वज्रदंत चक्रवर्ती का बारह मास	23 – 41
9	देव स्तुति (अति पुण्य उदय मम आया)	42
10	ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी कृत भजन	43

श्री 108 आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज का

जीवन परिचय

श्री आचार्य सूर्यसागरजी महाराज का जन्म कार्तिक शुक्ल नवमी, शुक्रवार विक्रम सम्वत् 1940 (ई. सन् 1883) ग्वालियर रियासत के शिवपुर जिलान्तर्गत प्रेमसर नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री हीरालाल व माता का नाम गेंदाबाई था। आप पोरवाल दिगम्बर जैन जाति के यसलहा गोत्र में उत्पन्न हुए थे।

गृहस्थाश्रम में आपका नाम हजारीमलजी था। हीरालालजी के सहोदर भाई श्री बलदेवजी के कोई संतान नहीं थी, अतः हजारीमलजी उनके दत्तक हो गये। बलदेवजी की धर्मपत्नी का नाम भूलाबाई था। बलदेव जी झालरापाटन में अफीम की दलाली करते थे।हजारीमलजी बाल्यावस्था में ही झारलापाटन

आ गये और वहाँ ही उन्हें सामान्य शिक्षा प्राप्त हुई। दुर्भाग्यवश वि. सं. 1952 में जबकि हजारीमलजी बारह वर्ष के ही थे, बलदेवजी की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद हजारीमलजी का पालन-पोषण झालरापाटन के प्रसिद्ध सज्जन नाथूरामजी जोरजी राव के द्वारा हुआ। ये बलदेवजी के परम मित्र थे। परिस्थितिवश हजारीमलजी को विशेष शिक्षा प्राप्त न हो सकी और छोटी अवस्था में श्री शिवपुर जिले के मेवाड़ ग्राम में ओंकारमलजी पोरवाल की सुपुत्री मोताबाई के साथ विवाह भी हो गया। इसके कुछ दिनों बाद हजारीमलजी इन्दौर चले गये और वहाँ आपने राव राजा सर सेठ आदि अनेक पद विभूषित श्री हुकुमचन्दजी के यहाँ तथा बाद में स्वर्गीय सेठ कल्याणमलजी के यहाँ नौकरी की, किन्तु आपको नौकरी करना पसंद नहीं आया। स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना ही आपने अच्छा समझा और एक कपड़े की दुकान इन्दौर में ही कर ली। साथ में कपड़े की दलाली भी करते रहे। इससे आपकी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक रही।

आपके कई संतानें हुईं। उनमें श्री शिवनारायणजी एवं समीरमलजी दो पुत्र अब भी मौजूद हैं, जो इन्दौर में ही कपड़े का व्यवसाय करते हैं।

हजारीमलजी की बाल्यावस्था से ही धर्म की ओर बहुत रुचि थी। शास्त्र स्वाध्याय, पूजन प्रक्षाल, सामायिक आदि में आप बचपन से ही काफी समय लगाया करते थे। ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती गई, धर्म की ओर आप अधिकाधिक झुकते गये। भाग्यवश आपको धर्मपत्नी भी ऐसी ही मिली, जो धार्मिक चर्चाओं को अच्छी तरह समझती और गोम्मटसार आदि सिद्धान्त ग्रन्थों का स्वाध्याय करती थी। इससे आपको ज्ञानवृद्धि में काफी सहायता मिली, पर दुर्भाग्यवश यह सहयोग बहुतकाल तक न रहा। विक्रम संवत् 1972 में आपकी पत्नी का देहान्त हो गया। पत्नी वियोग के पश्चात् संसार, शरीर और भोगों से आप उदासीन रहने लगे और हृदय में वैराग्य-मय जीवन

व्यतीत करने की आकांक्षा बढ़ने लगी। संवत् 1981 का वर्ष था। एक दिन रात्रि के समय श्री हजारीमलजी को यह स्वप्न आया कि जलाशय में एक तख्ते पर बैठा हुआ कोई आदमी उनसे कह रहा है कि चलो आओ, देर न करो। पर उसके आग्रह करने पर भी उन्होंने जलाशय में प्रवेश नहीं किया। तब उस आदमी ने तख्ते को किनारे पर लगाया और उनको किसी तरह तख्ते पर चढ़ाकर थोड़ी दूर जल में ले जाकर एक स्थान पर रखे पीछी-कमण्डल की ओर संकेत करके कहा इन्हें उठा लो, पर उन्होंने इनकार कर दिया। उस व्यक्ति के दो-तीन बार कहने पर भी जब उन्होंने पीछी कमण्डल नहीं उठाये और 'नहीं उठाऊँगा' यह कहते हुए ही बिस्तरों पर कुछ हटे तो पलंग पर से गिर पड़े।

यह सब स्वप्न था। कोई सच्ची घटना नहीं। फिर भी इस घटना ने हजारीमलजी के जीवन में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया और उनका संसार छोड़ने का विचार और दृढ़ हो गया। संयोगवश उस वर्ष संवत् 1981 में श्री शान्तिसागरजी महाराज (छाणी) का चातुर्मास योग इन्दौर में ही था। हजारीमलजी को संसार से विरक्ति हो गई थी। फलस्वरूप आसोज शुक्ला षष्ठी, वि. सं. 1981 को श्री आचार्य शान्तिसागरजी महाराज (छाणी) के पाय आपने ऐलक दीक्षा ले ली। ऐलक हो जाने के बाद इन्हीं हजारीमलजी का नाम सूर्यसागरजी रखा गया था। इसके 51 दिन पश्चात् मंगसर कृष्णा एकादशी को हाटपीपल्या (मालवा) में उन्हीं आचार्य शान्तिसागरजी के पास सर्व परिग्रह को त्यागकर आपने निर्ग्रन्थ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली।

मुनि-जीवन की दीक्षा के बाद स्वात्मोत्थान का विचार तो आपके सामने रहा ही, पर स्वेतर प्राणियों को किस तरह धर्म पर लगाना चाहिए, यह विचार भी आपके हृदय में सतत बना रहा और इसके अनुसार आपकी शुभ प्रवृत्तियाँ भी होती रहीं। आपके सदुपदेशों से अनेक स्थानों पर पाठशालाएँ, औषधालय

आदि अनेक परोपकारी संस्थाएँ खुलीं। सैकड़ों स्थानों पर विनाशकारी संघर्ष मिटकर शान्ति स्थापित हुई जो झगड़े न्यायालयों से न मिट सके थे, जो पचासों वर्षों से समाज की शक्ति को क्षीण कर रहे थे। जिनमें हजारों रुपये नष्ट हो चुके थे, जिनको लेकर बीसों बार मारपीट और सिर फुटौव्वल तक हो चुकी थी, परस्पर पिता-पुत्र, भाई-बहन, स्त्री-पुरुष आदि में जिनके कारण खूब लड़ाइयाँ चल रही थीं, परस्पर कुटुम्बियों में जिनके वजह से आना-जाना और मुँह से बोलना तक बंद था। ऐसे एक नहीं सैकड़ों व्यक्तिगत, सामाजिक पंचायत परोपकारी सम्बन्धित चौमूं भिंड, जयपुर, टोंक, मुंगावली, दक्षुरई, चंदेरी, हाटपीपल्या टीकमगढ़, गव उदयपुर, सेपवारी, भीलवाड़ा, नरसिंहपुरा, डबोक, साकरोदा, भादवा आदि सैकड़ों स्थानों में झगड़े आपके उपदेशामृत से शान्त हुए। इससे जैन समाज का बच्चा-बच्चा परिचित है। जिन-जिन नगरों व ग्रामों में आपका पदार्पण हुआ है, शान्ति की लहर दौड़ गई है। यही वर्तमान मुनि-समाज में आपका आदरणीय स्थान है और सभी नवीन तथा प्राचीन विचार वालों की आपमें श्रद्धा है। जैन समाज में ही नहीं, जैनेतरो पर भी आपके उपदेशों का प्रभाव पड़ता है और फलस्वरूप वे प्रतिज्ञाएँ लेते हैं। कार्तिक शुक्ल नवमी वि.सं 1985 (सन 1928) कोडरमा ,झारखण्ड मे आपको आचार्यपद प्राप्त हुआ।

आचार्य श्री सूर्य सागर जी महाराज द्वारा प्रणीत एवं संग्रको ग्रंथो में अभी मात्र कुछ ग्रंथो की ही pdf उपलब्ध हो पाई है उन सब को निचे दिए गए बटन पर क्लिक करके डाउनलोड करा जा सकता है। यदि आपके पास महाराज साहब का कोई ग्रंथ हो तो कृपया हमे उस की पीडीएफ उपलब्ध करा कर हमे धन्य करे! जय जिनेन्द्र!

Download PDF here or Download PDF here

प्रातः स्मरणीय निर्ग्रंथ दिगम्बर जैनाचार्य श्री 108 सूर्यसागर जी महाराज द्वारा प्रणीत एवं संग्रहीत ग्रंथों की नामावली

1) श्रावकधर्मप्रकाश - सामान्य रूप से

2) श्रावकधर्मप्रकाश - विशेष रूप से

3) संयमप्रकाश ग्रन्थ
   क. मुनिधर्म का पांच किरणों में वर्णन
   ख. श्रावक धर्म का पांच किरणों में वर्णन

4) अध्यात्म ग्रन्थ संग्रह - आठ ग्रन्थों का समुदाय कर के उनकी बालबोधनी टीका, उन आठ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं
   क. तत्त्वानु-शासन
   ख.वैराग्य-मणिमाला
   ग.समाधि शतक
   घ.परमानन्द स्तोत्र
   ड .स्वरूप संबोधन
   च. इष्टोपदेश
   छ.सामायिक पाठ
   ज. मृत्यु महोत्सव

5) आत्म साधन मार्तण्ड - आत्म अनुभव का उपाय

6) आत्मसद्बोध मार्तण्ड - सामायिक आदि का स्वरूप संग्रह (संभवत: इसी का दूसरा नाम आत्मबोध मार्तण्ड है)

7) अभक्ष्य विचार मार्तण्ड - 22 अभक्षों सहित द्विदल का स्वरूप पूर्ण विधि विधान सहित

8) सद्बोध मार्तण्ड - निगोद से निकलना तथा व्यवहार राशी व चतुर्गति देव पर्याय सहित मोक्ष का स्वरूप

9) निर्जरामार्तण्ड - कर्म की सत्ता, बंध, उदय, उपशम आदि 10 करणों सहित स्वरूप (संभवत: इसी का दूसरा नाम निर्जरासार है)

10) निजानंद मार्तण्ड - शुद्धात्मा की व्यवस्था कैसे और क्यों करने रूप समझावट तथा आत्मा का शुद्ध अनुभव का स्वरूप गुणस्थान मार्गणा सहित

11) विवेक मार्तण्ड - संसारी जीवों को किस प्रकार अपनी आत्मा का अनुभव कर अपनी आत्मा को बलवान बनाना चाहिए उसका कर्तव्य यानी उपाय

12) स्वभावबोध मार्तण्ड - आत्मा किस प्रकार परीषह सहकर अपना स्वरूप निजानंद पद कैसे प्राप्त कर सके

13) प्रबोध मार्तण्ड प्रथम भाग - प्रश्न संसारी आत्मा संसार के व्यवसाय से कैसे छुटकारा पावे उसकी व्याख्या

14) प्रबोध मार्तण्ड द्वितीय भाग - उतर, संसारी आत्मा संसार की व्यवस्था

में रहते हुए संसार के कारणों से इस प्रकार भावना से पृथक हो सकता है।

15) आर्षमार्ग मार्तण्ड - इसमें पंचामृत अभिषेक व प्रतिमा जी पर केसर पुष्प नहीं चढ़ाना तथा स्त्रिया भगवान का स्पर्श न करे चंवर रात्रि पूजनादि का निषेध

16) आवश्यक मार्तण्ड - पाक्षिक श्रावक से लेकर ग्यारह प्रतिमा तक का तथा समाधिमरण करने का खुलासा विधि विधान सहित स्वरूप

17) लावनी संग्रह - पुरातन लावनियों का संग्रह

18) विविध संग्रह - पूजन मुनियों की आहार विधि वगैरह

19) नित्य पाठ गुटका - स्तोत्र तथा सामायिकादि

20) परम अध्यात्म मार्तण्ड - शुद्धात्म द्रव्य का कथन

21) तत्त्वालोक मार्तण्ड - द्रव्य के कौन कौन से गुण और पर्यायें हैं तथा परिणमनशीलता का यथार्थ स्वरूप

22) स्तोत्र मार्तण्ड - विभिन्न स्तोत्रों का संग्रह

23) प्रभात प्रार्थना - प्रातः बोलने की स्तुति रूप कथन

Download PDF here or Download PDF here

वीर प्रार्थना

वीर जिन ऐसा दो वरदान

हृदय शुद्ध हो बुद्धि विमल हो निर्मल होवे ज्ञान,
द्वेष, क्लेश, भय, लोभ क्षोभ नश जाय कपट अभिमान
वीर जिन.....

रंक राव बलहीन बली अरि मित्र निधन धनवान
भेद भाव टुक रहे न सम सब को एक समान
वीर जिन.....

रोगी शोकी , दुखित भुखित को देख न उपजे ग्लान
करूं दूर दुःख मैं उन सबका, हर्ष हृदय में ठान
वीर जिन.....

सेवा धर्म होय व्रत मेरा ,दान प्रेम-रस दान
करूं विश्व भर की मैं सेवा कर न्योछावर प्रान
वीर जिन.....

दूर होय अज्ञान अँधेरा उदय देख रवि ज्ञान
ज्योति प्रेम जग चहुं दिशि फैले धरें आपका ध्यान

वीर जिन ऐसा दो वरदान

श्री वीतरागाय नमः

आत्म बोध मार्तण्ड

मंगलाचरण

दोहा

कला वहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार॥1॥
पंच परम पद जगत में, आदि मंगल जान।
इनको जो नर समझले, करे कर्म की हान॥2॥
ये ही निर्मल आत्मा, अरहंत साधु सुसिद्ध
इनको ध्याये चित्त में, पुरुष अर्थ हो सिद्ध॥3॥

अर्थ - अनन्त गुणों का पिटारा जो यह आत्मा है उसे ही पुरुष कहा गया है। उसके अर्थ अर्थात् प्रयोजन मुख्यता से दो वर्णन किये गये हैं। (1) पहिले जीव की जीविका, (2) अपना उद्धार करना (यानि संसार रूपी पिंजरे से अपनी आत्मा को बाहर निकालना) यही पहिला धर्म इस जीव के लिये आचार्यों ने बतलाया है। इसलिये आगे कहते हैं, कि यह जीव संसार में अनादिकाल से है। इसने सदा से अपनी जीविका का ही उपाय किया है। आज तक इस जीव ने यह विचार नहीं किया कि मेरा उद्धार क्या है? इसलिये इसके वास्ते महर्षियों ने उपदेश किया है, कि हे! भाई तू अनादिकाल से अपने हित को भूला हुआ है। तूने मनुष्य शरीर और (जैन धर्म समान)

उत्कृष्ट धर्म को प्राप्त किया है। अब तेरे तीव्र पुण्य कर्म का शुभ उदय आया है। इससे तू ऐसा उपाय कर जिससे इस संसार रूपी चक्र से तेरा आत्मा बाहर निकल जावे, यही तेरा पुरुष होने का प्रयोजन है। अब तू वैसा ही कर्तव्य कर, जिससे तेरी नैया भवसागर से निकल कर नित्य आनन्द मय सुख द्वीप को प्राप्त करे।

संसारी जीवों के लिये सुख और शान्ति का उपाय एक साम्यभाव रखना ही है। इस साम्यभाव के बिना मनुष्य जन्म पाना ही वृथा है। यही नीचे उपदेश द्वारा समझाते है।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि सबसे पहिले वह यह विचार करे कि संसार में कितने प्राणी हैं और उनकी क्या क्या हालत हो रही है। उनमें मेरी क्या व्यवस्था है? उससे पता लगेगा कि दूसरों से मेरी हालत अच्छी है या बुरी। इन दोनों प्रकार की हालतों का विचार करना ही मनुष्य की मनुष्यता कहलाती है।

उन दोनों हालतों में से जब तुम्हारे सामने एक आएगी तब उसमें विचारो कि इनसे मेरी अवस्था शोचनीय है तो क्यों?

आपको उत्तर मिलेगा कि तुम्हारी यह शोचनीय दशा है, सो तुम्हारे पूर्व कार्यों का फल है।

यह सिद्धान्त निश्चित है कि जो जैसा करेगा वह वैसा ही फल पाएगा।मैंने पूर्व में अच्छा किया है या करूंगा तो अच्छा उदय आएगा, और बुरा किया है या करूंगा तो बुरा फल भोगना पड़ेगा, इसलिये इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि कभी भी दूसरे प्राणियों की आत्मा को दुःख नहीं पहुंचे, यही

मनुष्य का मुख्य काम है। जब तक आदमी अपने ऊपर ख्याल नहीं करता तब तक दूसरों के भले बुरे का विचार ही नहीं कर सकता, इसलिये सबसे पहले मनुष्य को अपने सुख-दुख का अनुभव करना चाहिये। मुझे जो चीज अच्छी या बुरी लगेगी वही दूसरे को भी समझना चाहिए। जब अपने ऊपर विचार करेगा तब दूसरों के बारे में कदापि खोटा विचार न करेगा और तभी पाप से बच कर सुख को प्राप्त हो सकता है संसार में जिन प्राणियों ने दूसरे के प्रति उपकार किया है उन्हीं जीवों ने संसार से पार होने का मार्ग पाया है।

अब उन शांत भावों की संसारी जीवों को खोज बताते हैं, वह शान्ति किसने और कैसे प्राप्त की है, सो सुनिये

(दोहा)

आपा पर को समझ कर किये घातिया चूर।
बे ही जग जीवन प्रभु, समझ आत्मा सूर॥
वैसा तुम अनुभव करो, हो जाओ भव पार।
दासोऽहं में रमत हो, ये नहीं आतम सार॥
दद्दा में दो ही बसें, सो ही करता भेद।
ये दोनों छोड़े बिना नहीं मिटे भव खेद॥
सब से उत्तम अहम् है, समझो पहिले एह।
सुख में एही सार है, तज देखो सब नेह ॥
सोहं में रम जाइये, ये ही तेरा काम।
बिना रमण इसमें किये, नर भव आयु निकाम ॥
जिनवर का उपदेश यह, पहिले समझो आप।
जब तुम निज को समझलो, फिर न तपो भवताप॥
जैसी करणी हम करी, तुमको दई बताय।
वैसे में रम जाइये ये ही मोक्ष उपाय॥

जिस करणी से हम भये, अरहंत सिद्ध भगवान।
सो ही करणी तुम करो, हम तुम एक समान॥
आतम रुचि सम्यक्त्व है, आतम समझे ज्ञान।
आतम में स्थिरता करो, येही चरण महान॥
कहने के यह तीन हैं, आतम द्रव्य स्वभाव।
भव्य बिना नहीं पाइये, कोटिक करो उपाय॥
आपापर को समझ कर पर को देओ त्याग।
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत इनही में चित पाग॥
दृढ़ा से दर्शन करो, सस्सा माहिं समाय।
रम जावो जब अहम् में, तब ही एक लखाय॥

इस प्रकार की व्यवस्था जो कोई भी जीव करना चाहे तो उसे सबसे पहिले अपने आत्मा को शांत बनाना चाहिये। जब तक आत्मा में शांति नहीं होगी तब तक सब करनी विफल है। और जब ऐसा बन गया तब ही पूर्णरूप से सफलता प्राप्त होगी, सो ऐसा कार्य सामायिक के बिना न किसी ने किया, न हो सकता है।

अतः यहाँ उस सामायिक का स्वरूप बताया जाता है। सबसे पहिले सामायिक क्रिया में पूर्व या उत्तर दिशा मुख्य मानी है।

प्रश्नः आपने जो पूर्व और उत्तर दिशा मुख्य कही है, सो ये दोनों ही दिशा क्यों मुख्य मानी हैं?

उत्तर - जैन धर्म में पूर्व , उत्तर दिशा मुख्य इसलिए मानी है कि समस्त दिशाओं और विदिशाओं में सूर्य को उगाने वाली एक पूर्व दिशा ही है। कहा है कि-सारी दिशा धर रही रवि का उजेला, पै एक पूर्व दिशा रवि को उगाती।

इसलिये पूर्व दिशा ही मुख्य है। उत्तर दिशा मुख्य यों मानी है कि उस ओर विदेह में सदा तीर्थंकर रूप सूर्य का उदय रहता है।

इसलिये उत्तर या पूर्व में मुंह करके खड़े होकर नव बार पंच नमस्कार की जाप्य करना चाहिये और तीन आवर्त करना यानि मन, वचन, काय से दोनों हाथों को जोड़ कर बाईं तरफ से दाहिनी तरफ को तीन बार घुमाना और अन्त में एक बार मस्तक नवाना चाहिये पश्चात् अपने दाहिनी ओर घूम कर दूसरी दिशा की तरफ उसी प्रकार नव बार जाप्य जप कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके, फिर तीसरी दिशा में, बाद में चोथी दिशा में तीन आवर्त और एक शिरोनति कर, जिस दिशा में खड़े होकर प्रारंभ किया था उसी स्थान पर फिर ऊपर नीचे को आवर्त शिरोनति सहित बैठ कर नमस्कार करना। फिर इतना सामान मेरे बदन पर व नीचे आसन है वह और मेरे चारों दिशा में साढ़े तीन हाथ प्रमाण स्थानरूप परिग्रह है, इसके सिवाय इतने समय तक सब प्रकार के परिग्रह का मेरे त्याग है। ऐसा नियम करके जमीन पर या पाटले पर या आसन पर जो आसन अपने को किसी प्रकार बाधा नहीं करे वैसा पद्मासन, अर्धपद्मासन, पर्यंकासन आदि में से कोई आसन लगा कर बैठ जावें, चाहें तो खड़े होकर भी सामायिक कर सकते है। उस समय आत्मा स्वभाव का चिन्तवन करें कि आत्मन, तू कहां से तो आया है, और कहां जाएगा और यह बनाव कैसे बन रहा है, और जो सामने आ रहा है उसमें तेरे राग द्वेष होता है या नहीं। अगर राग द्वेष होता है, तो क्यों? ऐसी मनुष्य पर्याय को पाकर फिर विचार नहीं किया तो मनुष्य पर्याय पाने से लाभ ही क्या उठाया। इस प्रकार के विचारों में उपयोग लगाना चाहिये।

अगर इस प्रकार के विचारों में उपयोग नहीं रमे, तो फिर नीचे लिखी बातों पर आत्मा को लगाना चाहिये।

यहाँ पर दृष्टांत द्वारा समझाया जाता है: एक गृहस्थ को जंगल में फिरते फिरते एक राक्षस मिल गया वह राक्षस बड़ा चमत्कारी था। उस गृहस्थ के और राक्षस के मित्रता हो गई, अब वह राक्षस उस पुरुष के पास रोज आने जाने लगा। एक दिन उस गृहस्थ ने राक्षस से कहा कि तुम रोज आते जाते हो, सो वहां न जाकर यहाँ ही ठहरो, राक्षस ने कहा कि मैं बिना काम नहीं ठहरता हूँ, मुझे कोई काम बताइये मैं एक समय भी बिना काम के नहीं बैठता, तुम अगर रोज काम नहीं बताओगे तो मैं तुम को मार डालूंगा ऐसा उन दोनों में वायदा हो गया।

इस प्रकार गृहस्थ जो काम बताये, वह राक्षस उन काम को तुरन्त कर डाले और फिर कहे कि काम बताओ तब वह गृहस्थ उस राक्षस से घबराया और एकान्त में बैठ कर विचार करने लगा, कि काम बतलाता हूँ तो कोई काम है नहीं, और नहीं बताता हूँ तो मुझे मार डालेगा। अब क्या करना चाहिये।

आखिर एकान्त में उस गृहस्थ ने सोच विचार कर यह निश्चय किया कि हे आत्मन तुम उस राक्षस ने कहो कि जंगल में जाकर वृक्ष की बिलकुल सीधी और बहुत लम्बी डाल काट कर लाओ और हमारे मकान के सामने एक चबूतरा बना कर उसको गाड़ दो। फिर लुहार के यहां से एक लोहे की सांकल लाओ और उस सांकल में दो बड़े कड़े लगाओ। एक कड़े को उस चबूतरे वाली डाल में डालो और दूसरे कड़े को अपने गले में डालो जब तक हम दूसरा काम नहीं बतायें तब तक इस लठ्ठे पर चढ़ो और उतरो।

इसके कहने का अभिप्राय यह है कि मनरूपी राक्षस को जब तक मोक्ष प्राप्ति रूपी दूसरा कार्य सामने नहीं आवे तब तक सिद्धांत रूपी अनुभव में रमाना या बारह भावनादि में रमाना या आत्मा चिन्तवन में लाना चाहिये। नहीं तो यह मन रूपी राक्षस पांचों इन्द्रियों के विषयों में फंसा कर इस आत्मा को

नरक या तिर्यंच गति में या निगोद में ले जाकर अनन्त काल तक दुःखों के गर्त में डाल देगा और महान यातनायें दिलाएगा।

इस प्रकार आगे हिंदी पद्यों में आत्मा का स्वरूप बताया जाता है:-

॥ चेतन चौबीसी रत्नावली ॥

जो पर भावों को तज करके, निजानंद में मग्न रहाय।
ध्यान हीन उपको नहीं पावत, स्वशरीर के माहिं बताय॥1॥
पूर्व सुक्ख का है करण्ड वह, पूर्ण ज्ञान अमृत समुदाय।
वीर्य दरश पूरण जिन आत्म, वही आत्म परमात्म कहाय॥2॥
द्रव्य कर्म या भाव कर्म, या नो कर्मों बिन है समुदाय।
निज परमातम शुद्ध चेतना, ऐसा आतम शुद्ध कहाय॥3॥
राग रहित चिंता निज उत्तम, राग सहित पर मध्यम जान।
काम भोग इच्छा है अधमा, अधमाधम पर बुरा बखान॥4॥
नाश करो संकल्प विकल्प का, ज्ञान सुधारस ग्रहण करेय।
इन भावों से आतम ज्ञानी, सदा सास्वता अनुभव लेय॥5॥
यह उत्तम श्री अमिट साश्वता,आत्म भाव में जाग्रत एह।
इसमें सदा रमण वह करता, सो जानो पण्डित गुणगेह॥6॥
कमल पत्र अम्बु में रहता, निज निज गुण से भिन्न रहाय।
इस प्रकार देही में बसता, देह आत्मा एक नहीं थाय॥7॥
द्रव्य कर्म व भाव कर्म का, आतम से नहीं मेल कराय।
तो नोकर्म शरीरादिक में कैसे आत्म भिन्न नहीं पाय॥8॥
पूर्ण ज्ञान घन निज आतम है, अपने तन के माहिं बसाय।
ध्यान हीन नर देखत नाहिं, जैसे बासर घूक नहीं पाय॥9॥

ऐसा ध्यान करो तुम भविजन, विकृति तज मन थिर हो जाय।
तब आतम परमात्म तत्त्व का,परोक्षरूप अनुभव में लाय॥10॥
जो मुनिपुंगव ध्यान सहित है, वे ही आतम लाभ लहाय।
अरहंत होके कर्म नास कर, शिव नगरी में वेग बसाय॥11॥
जो योगीश्वर सब विकल्प को आत्म तत्त्व से वेग भराय।
हो आनंदरूप परमानन्द, निज स्वभाव में रमण कराय॥12॥
बाह्याभ्यंतर छोड़ परिग्रह, चिदानन्दमय है सुखदाय।
शुद्ध निरंजन आत्म तत्त्व का,सुचिरं काल तक अनुभवपाय॥13॥
लोक बराबर चित् प्रदेश है, ऐसा निश्चयनय बतलाय।
तनु प्रमाण कहते व्यवहारी, ऐसा मत जिन मार्ग बताय॥14॥
शुद्ध आत्मा का अनुभव कर,मन की भ्रान्ति शीघ्र नशाय।
जब थिर होय चित्त निरविकलप ,श्रीजिनवर पद यही कहाय॥15॥
बुद्धवीर जिन हरिहर ब्रह्मा, खुदा गॉड ईसा प्रभु सोहि।
सोही पूर्ण तत्त्व का ज्ञाता, परम पुरुष उत्तम गुरु सोहि॥16॥
सोई परम ज्योति परमातम, उत्तम तप जग समझो सोय।
परम ध्यान वह कहलाता है, निज अनुभव परमातम होय॥17॥
सोई मोक्ष मूल है उत्तम, सुख अनन्त का वह समुदाय।
वही शुद्ध है चित् स्वरूप है, वहीं चिदानन्द शिवका राय॥18॥
ऐसा परमानन्द आत्मा, परम शुद्ध चेतन ठहराय।
गुण उत्कृष्ट अमित साश्वत है, क्षीर उदधि ज्यों निज गुणमाय॥19॥
ऐसा आतम अर्हंत जिनवर, सात योग युत राग नशाय।
परमाल्हाद दिव्य कथनीकर, ऐसा समझो पण्डित भाय॥20॥
द्रव्य कर्म नो कर्म बिना अरु, भाव कर्म बिन मुक्त कहाय।
अष्ट गुणों युत सिद्ध कहावे, निज स्वरूप में समय बिताय॥21॥
सिद्ध समाना परखत निज को, सब कर्म बाके नशजाय।

अर्हंत होय सिद्ध पद पाते, सोही जग में पण्डित थाय॥22॥
सिद्ध समान जीव है वपु में, जैसे सुवरण पत्थर माहिं।
तिलके माहीं तेल है जैसे, घृत पदार्थ जिम दुग्ध रहांहिं॥23॥
काष्ठ मध्य अग्नि है जैसे, ऐसा आतम कल में जान।
यों विवेकजन श्रद्धा लाते, सम्यक दृष्टि पण्डित मान॥24॥

इसके आगे और भी साम्य भाव के लिए कहा जाता है उसे करना आत्म कल्याण के लिए श्रेयस्कर है।

॥ निजानंद स्तोत्र ॥

(दोहा)
सिद्धातम है जगत में, कर्म कलंक विहीन।
नमस्कार अनुभव किये, हो जाते स्वाधीन॥1॥

(सवैया 23 सा)
राग बिना निर्मल निज ध्यावे, वे होते जग में अरहंत।
पहिले उनको जग ध्यावत है, उन्हें अनुभवें बनें निशंक॥
ऐसी उत्तम सिद्ध आत्मा, समझ रमण से मिटे कलंक।
अनुभव कर लेवें जगवासी, कटै फांस अरु बने महंत॥

(दोहा)
रत्नत्रय मय जगत है, शक्ति व्यक्ति का भेद।
जब तक जी समझे नहीं, पावत है बहु खेद॥3॥
रत्नत्रय पाये बिना, ना कोई कीनी सिद्ध।

याते रत्नत्रय लहो, करो कर्म से युद्ध॥4॥
निज श्रद्धा सम्यक्त्व है, निज जाने सुज्ञान।
निजसंपति में थिर रहे , सच्चारित्र बखान॥5॥
आपा पर सों भिन्न लखि, पर को दे छिटकाय।
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत का यह ठीक उपाय॥6॥

॥ सम्यग्दर्शन का स्वरुप ॥

(पद्धरी छंद)
अन्नतानुबंधी मिथ्यात्व जान, इससे होवे सम्यक्त्व ज्ञान।
इनको उपशम या नाश होय, अर मिश्र[1] सहित ये तीन होय॥
इस विधि से सम्यक्उदय जान, याही को निज श्रद्धान् मान।

॥ सम्यग्ज्ञान का स्वरुप ॥

यह जीव तत्त्व को निज स्वरुप पहिचाने सम्यग्ज्ञानि भूप (8)

॥ सम्यक्चारित्र का स्वरुप ॥

(दोहा)
सम्यग्दर्शन ज्ञान ले, धरो दिगंबर वेष।
इससे मुक्ति होत है,कटते कर्म कलेश॥9॥

1 - क्षयोपशम

॥ ध्यान का लक्षण ॥

फिर ध्यावो निज चिंतवो, अपनी आतम जान।
यही सहज उपाय है, समझो आतम राम॥10॥
राग द्वेष वर्जन करो, मिटे सकल संतापि।
स्वसुभाव जाने बिना मोक्ष होय न कदापि॥11॥
सम्यग्भाव अभाव से, चेतन नाना रंग।
निज को निज में जिन लखे सुख में पड़े न भंग॥12॥
देव गति में तरसता, कब पाऊं नर देह।
कब मैं सत चारित्र लहुं, तजू जगत से नेह॥13॥
अब नर जामों मुझ मिल्यो, अब न संभालूं आप।
तो जग में रुलता फिरूं, सदा सहूँ बहु ताप॥14॥
आये तब लाये नहीं, साथ कछू नहीं जाय।
बिच ही पायो रहयो बीच, याते प्रीति नशाय॥15॥
प्रीति करें दुःख होत बहु, प्रीति गये सुख पाय।
राग द्वेष संसार है, सदगुरु यों फरमाय॥16॥
याते चेतन जीव जी, जग से ममता छोड़।
निज आतम को जान कर, इससे ममता जोड़॥17॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान मय, चारित्र का संयोग।
रमण करो इस मायने, मिटे जगत का रोग॥18॥
मानुष भव अवसर मिला, फिर ऐसा नहीं पाय।
अब के चूके क्या खबर, कैसी मति हो जाय॥19॥
याते सुख तोहि चाहिये, तो निज को पहिचान।
उसमें ही रम जाइये, ये ही सुख की खान॥20॥
सुन ले चेतन जीव जी, फिर न तपो भवताप।

सकल कर्म को नाश कर, रहत आप में आप॥21॥
इस विश्व सुख की विधि कही, कर इसमें सरधान।
अनन्त जीव ऐसा किया, हुए सिद्ध भगवान॥22॥
आतम अरु परमात्मा, द्रव्य दृष्टि से एक।
ऐसा मन निज कर भया, येही तेरी टेक॥23॥
सद्गुरु कहे जग जीवसो, तुम्हें अनन्ते काल।
इस जग में दुख पाइयो, अब छोड़ो जंजाल॥24॥

(रोला छन्द)

आतम सोही परमात्म जान, तब ही तेरा कल्याण मान।
जगरूप भ्रान्ति दुख की जु मूल, ये छूट गई मिट गया सूल॥
यह मनुज जन्म कर्तव्य सार, तब ही जी सुख पावत अपार।
जब भेद भाव को नाश होय, तब परमातम पर सार सोय॥

इस प्रकार आत्मा जब श्रद्धान, ज्ञान और आचरण बना लेता है, तब ही उसका पुरुषार्थ कहलाता है और उसी से वह पुरुष नाम को सार्थक बनाता है।

प्रश्न - आपने जो कहा तो तो ठीक है, पर इसके उपरांत और भी कोई उपाय है क्या?

उत्तर-सामयिक की विधि तो इसमें हम पहिले बतला ही चुके हैं, परन्तु उसे थोड़ा सा और खुलासा करके बतलाते हैं यह मन रूप बंदर बड़ा ही चंचल है, इसको स्थिर करने के लिये दूसरे उपाय को आप ध्यान पूर्वक सुनिये :

जब अपने आत्मा का शुद्ध विचार किया जाय और उस समय चित्त स्थिर न

हो तब अपने हृदय में एक अष्ट पंखुड़ी के कर्णिका सहित कमल की रचना कर उस कर्णिका का आकार नीचे लिखे अनुकूल बनाकर उसका ध्यान इस तरह किया जाय।

ईशान सम्यग्दर्शनाय नमः 6	पूर्व णमो सिद्धाणं 2	आग्नेय सम्यग्ज्ञानाय नमः 7
उत्तर णमो लोए सव्व साहूणं 5	कर्णिका णमो अरहंताणं 1	दक्षिण णमो आइरियाणं 3
वायव्य सम्यग्तपसे नमः 9	पश्चिम णमो उवज्झायाणं 4	नैर्ऋत्य सम्यक् चारित्राय नमः 8

नोट- इस नक्शे का गोल ब्लॉक तैयार न हो सकने से यह चौकोर बनवाया गया है। पाठक इसे गोल (कमलाकार) समझ ले।

इस प्रकार बीच की कर्णिका और आठ पंखुडी सहित कमल अपने हृदय कमल में बनाकर ऊपर जो जो शब्द जिन जिन दिशाओं में लिखे हैं, उनको वहां स्थापित करके उसी रूप से चिंतवन करना चाहिये। जिसमे शान्ति के साथ दो घड़ी (48 मिनट) समय लग जाता है। इसके सिवाय आगे और भी बताया जाता है।

(पद्धरी छंद)

इस जगत माहिं छह द्रव्य मान,पर्याय सहित गुण को निधान।
मंगल अरहंत रु सिद्ध जान, मैं नमूं जोर जुग तिन्हें पान॥1॥
षटद्रव्यों की नहीं आदि अंत, निज स्वरूप में सब वसन्त।
तिन माहिं जीव विवेक वान, है सिद्ध समान निगोद जान॥2॥

(दोहा)

द्रव्य दृष्टि से जीवड़ा, सिद्ध निगोद समान।
ऐसा जिनमत कहत है, ऐसा कर सरधान॥3॥
इस विधि हृदय धारकर, करहु स्व पर का भेद।
जिससे बेड़ा पार हो, मिटे जगत का खेद॥4॥

(पद्धरी छंद)

अब सर्व जीव है मुझ समान, अब करूँ राग अरु द्वेषहान
रख सर्व जीव से साम्यभाव, मैं तजूँ अरु विषय चाव॥5॥

(दोहा)

राग द्वेष युत होय कर, बहुत दुखाये जीव।
तिन सबसे मैं क्षमा लहूँ, उतरों भय दधि सीम॥6॥
तीनों योग संवार कर, कृत कारित से जान।
रत्नत्रय खंडित किया, मिथ्या हो भगवान॥7॥
मनुष देव तिर्यञ्च कृत, जो होवे उपसर्ग।
थिरता से मैं ना चलूँ,ये ही मेरा वर्ग॥8॥
राग द्वेष भय शोक मद, ममता मोह विहीन।
आत्म भाव इनसे नशे याते हो आधीन॥6॥

मम जीवन मरण अलाभ लाभ, है बन्धुवर्ग से भाव आन।
सुख दुख दोही एक मान,अरु कंचन काच समान जान॥10॥
ये आत्म भाव से भिन्न जान, मेरा है दर्शन चरण ज्ञान।
मैं एक सदा अस्तित्व रूप, मेरा है लक्षण सुख स्वरूप॥11॥
ये जितने भी पर भाव आप, इन माहिं एक मेरो भी नाहिं।

ये हैं संयोगज दुःखरूप, इनको त्यागे वे जगत भूप॥12॥
जो साम्य भाव की तोहि चाह, तो सामायिक बिन प्राप्ति नाहीं।
इस मनुज जन्म को सार पाय, तो निज को निज में रमण लाय॥

इस प्रकार के चिंतवन के बाद समय बाकी रहे तो और पाठों का चिन्तवन करना चाहिये जिन्हें आगे बताया जाता है।

॥ सामायिक चालीसा ॥

(नैनसुखदासजी कृत)

मंगलं भगवान वीरो, मंगल गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

(दोहा)
ॐ ह्रीं अर्हं परम पद, इष्ट हृदय अवधार
अघ अपराध क्षमावणी, कहूँ सामायिक सार॥ 1॥

जिन लोक शिखर स्थित कीनी, जगजाल जलांजुलि दीनी।
तिनको परिणाम हमारो, मोहि जान दुखी निस्तारो॥ 2॥

(गीता छन्द)
निस्तार अपनी जान के, आचार्य पद वन्दन करूँ।
उवझाय साधुप शान्ति चित्त, चरणारविन्दन में परूँ॥
जे वस्तु तत्त्व विचार समता धार अणुव्रत आदरें।
पाले निरन्तर शील तिनहि, त्रिकाल हम वन्दन करें॥3॥

(चाल छन्द)

जेते तिहुं लोक मंझारी, जिन मन्दिर जग अघहारी।
कृत्रिम अरु जे अघनासी, वन्दन कटती जग फांसी॥4॥

(गीता छन्द)

कटि जाय फांसी त्रिविध मेरी, दुःख सागर में पर्‍यो[1]।
नहिं कियो सुकृत है जिया चिरकाल संकट ही भर्‍यो[2]॥
जो करे जैसी भरे तैसी, दोष किसको दीजिये।
करणी का फल उसको मिलत है, यही निश्चय कीजिये॥5॥

(चौपाई)

हम निज अनुभूति न जानि पर परिणति में मति ठानी।
भव बन्धन बेल बधाई बीत्यो चिरकाल यहां ही॥ 6॥

(गीता छन्द)

बीते अनन्तानन्त कल्प, विकल्प ही में दिन गये।
नहि घटी संशय, बढ़ी तृष्णा किये बन्धन नित नये॥
किस विधि तिरे नैया हमारी, पाप पत्थर से भरी।
जन्मादि के जंजाल में, यह कम के वश में परी॥7॥

(चाल छन्द)

पकड़ो तुम धर्म सहारो लेकर आतम निर्वारो।
बनकर समर्थ जगत्राता, बिन कारण बन्धु विख्याता॥8॥

---

1 , 2 – पुराने प्रिंट में इस प्रकार ही छपा है , क्या लिखा है यह हमारे समझ नही आया।

(गीता छन्द)

विख्यात यश आतम तुम्हारो, भील से जग तिरगये।
अनुभव प्रताप त्रिलोकपति जिननाथ नेमीश्वर भये॥
तिरगये शूकर सिंह मर्कट, निबल पशु पक्षी घने।
ये वृषभसेन गणाधिपादि, आदि जिनवर के कने॥9॥

(चाल छन्द)

गज श्वान सर्प अरु भेका, अंजन आदिक जो अनेका।
निज अनुभव ने बहुतारे,पहुंचे शिव स्वर्ग मंझारे॥10॥

(गीता छन्द)

पहुँचे स्वरग अरु मुक्ति में दएडकचारदिक अघ भरे।
जिन पांचसौ मुनि मार, घानी डार कर चूरण करें॥
महाव्रत पाप कलंक मण्डित, तिरगये दुख द्वन्दते।
यह जान निजकी शरण लीनी, निरवरु जग फदंते॥11॥

(चाल छन्द)

तुम वीतराग जगभूपा सर्वज्ञ चिदानन्द रूपा।
समदर्शी नित्य तुम्हारे घट घट की जानन हारे॥12॥

(गीता छन्द)

मैं आपजानूं कर्म अपने, कौन से विनती करूं।
मैं चौर निज को कौन राखे, शरण किसकी आदरु॥
मैं तिरुं वा निस्तरुं जग में, शरण आतम सार है।
इस विकट संकट जाल में, निज भाव तुमरा अधार है॥13॥

(चाल छन्द)

पूरव भव पाप कमाये, तृष्णावश जीव सताये।
तिन सबतें अर्ज हमारी, अब करहुँ क्षमा सुखकारी॥14॥

(गीता छन्द)

करिये क्षमा, सुखदाय, मैं, अज्ञान वश हिंसा करी।
मिथ्यावचन कहि दुःख दिये, छलछिद्र कर लक्ष्मी हरी॥
सेये कुशील कुकर्म कीने, बढ़ी तृष्णा नित नई।
लिपटयो परिग्रह जाल में, कर पांच अघ दुर्गति लई॥15॥

(चाल छन्द)

पण थावर हिंसा कीनी, खनि पृथ्वी पीडा दीनी।
धरि अग्नि तपायो पानी, पावक दलमली अज्ञानी॥16॥

(गीता छन्द)

अज्ञान वश पावक प्रजाली, पवन तरुवर संहरे।
चूल्हादि ऊखल मुसलते, बहु जीव जंगम पशु हरे॥
चाकीनतें तन पीस डारे, ईर्यापथ सेती टरो।
या भाति जिनपर भई बाधा, सो क्षमा हम पर करो॥17॥

(चाल छन्द)

धरि क्रोध जिन्हें दुख दीने, कर मान अनादर कीने।
धोखा दे प्राण दुखाये, करे लोभ प्रपंच भ्रमाये॥18॥

(गीता छन्द)

प्रपंच कर जग में भ्रमाये, क्षमा मन में ना धरी।
कटु वचन भाखे दगा दीने, वितथ वाणी आदरी॥
तज शौच, संयम, तप कियो नहिं, त्याग आंकिचन हरो।
शीलादिको तज, पाप बांधे, सो क्षमा हम पर करो॥19॥

(चाल छन्द)

कृमि कीडी भँवर सताये, समनस अमनस भरमाये।
दल मल अरु बांधे मारे, भाखे दुर्वचन अपारे॥20॥

(गीता छन्द)

भाखे कटुक वच, कान छेदे, कंछ नासा खण्डियो।
अति भार रोप अनर्थ कीने दन्त डंक विहिंडियो॥
धर्मीन पर उपसर्ग कीने, तीर्थ पर पातक करे।
सब जीव करियो क्षमा, तजकर शल्य, हम पायन परें॥21॥

(अडिल्ल)

स्वर्ग नरक नर लोक विषें, प्राणी जिते।
चारों गति में वर्तमान जित तित तिते॥
मैं चित में कर जोर अरज इतनी करूं।
करहु क्षमा अपराध भवोदधि से तिरूं॥22॥

(गीता छन्द)

मैं तिरूं भव सागर दुखाकर, जो कृपा इतनी करो।
अपराध काल अनादि के, मम आज लों के परिहरो॥

मैं किये घोर अनर्थ जिन पर, बिना कारण दुख दियो।
जित होय तितहि क्षमा कराऊं, धर्म को शरणो लियो॥23॥

(अडिल्ल)
बीत्यो काल आनदि किये अघ भारही।
भ्रम्यो चौरासी लक्ष योनि में झारही॥
रही कौनसी ठौर जन्म जहां नहीं लियो।
कौन जीव से नाता जग में नहिं कियो॥24॥

(गीता छन्द)
नहिं कियो नाता कौन सेती, बैर किससे नहिं करो।
चिरकाल धर धर स्वांग, नर्क निगोद में गिरगिर परो॥
पशु योनि में बहु दुःख पाये, तजहु शल्य दुखाकरी।
भव भ्रमण छूटे कर्म टूटे, मिटे पुद्गल चाकरी॥25॥

(अडिल्ल)
जोलों कर्म कुबन्ध बंधों जग में फिरूं।
पाणि पात्र आहार न जबलों मैं करूं॥
जबलों चार कषाय हृदय से ना टरे।
तबलों चारों शरण भावना हम वरें॥26॥

(गीता छन्द)
हम करें चारों शरण केरी भावना चित –चावसों।
दिन रैन श्वासोच्छवास में, अरहंत निकसो भावसों॥
जग भोग संपति मैं न चाहूँ, जीव अब ऐसी करूं।[1]

1 – पुराने प्रिंट में इस प्रकार लिखा है – जीव अब ऐसी करूं ।

संतोष में चित होय थिर, भव भ्रमण के दिन उद्धरु॥27॥

(अडिल्ल)
आतम दीन दयाल वैद्य करुणापति।
मैं दुखिया संसार कर्म रोगी अति॥
गठरी में नहिं दाम न सुकृत मैं कियो।
जिनकी शरण विसारो मरो, अब मैं जियो॥28॥

(गीता छन्द)
जियो न मरों रहो जग में, भरी वेदन मैं घनी!
किह विध कहूँ अपनी व्यथा, चिरकाल जो मोप बनी॥
सुत मात दारा कान चारा, सगे सब देखत रहें।
बिन पुण्य खाली हाथ नर्क, निगोद के संकट सहे॥29॥

(अडिल्ल)
डारयो भाड मंझार पकड़ शूली धरयो।
पेल्यो घाणी घालि पीस चूर करयो॥
काट्यो कंठ कुठार विदारयी तन सबे।
पायो तांबो गांल बढ़ी वेदन तबे॥30॥

(गीता छन्द)
बढ़ी वेदन, किये छेदन, फूंक मुख कूंचा दियो।
कह नारकी दुर्वचन पापी, क्यों न ते सुकृत कियो॥
विललाय पासन लोट हारी, किनहु मेरी ना सुनी।
चिरकालतें भगवान ये, संकट सहे त्रिभुवन धनी॥31॥

(अडिल्ल)

आत्म समर्थ निज भाव छुड़ा जग फंदते।
चौरासी लक्ष योनि तने दुःख द्वंदते॥
तुमसा दाता कौन निजहीं जग तात हो।
बिन कारण जग बन्धु तुम्ही विख्यात हो॥32॥

(गीता छन्द)

विख्यात हो सर्वज्ञ सत्य, अमोघ वाणीं उच्चरो!
वर्षाय धर्मामृत जगत के, पाप आतप तुम हरो॥
प्रभु सुन तुम्हारे वैन, पशु पक्षी अणुव्रत आदरे।
गज सिंह मोर भुजंग, समता भाव घर भवजल तिरे॥33॥

(अडिल्ल)

जाति विरोधी जीव मिलें हितलाय के।
कर निजारथ काल लब्धि बल पाय के॥
तो मोहि संशय नाहिं शरण खुद की लही।
लाजे आतम नाम जो अब उरझी रही॥34॥

(गीता छन्द)

उरझी रही नैया हमारी, शरण निज की आयके॥
तो करे कौन सहाय मेरी, कर्म मच्छ हटाय के। ॥
हूं पूर्ण ब्रह्म विवेक सागर, धर्म लग्वि यह कीजिये।
मैं रहूँ अपने आप मांही, यहि कर्तव्य हूजिये॥35॥

(अडिल्ल)

इन्दु धर्म हुत नन्द सु संवत् सार है।
माघ शुक्ल दशमी गरुडाग्रज वार है॥
भादों सप्तम श्याम कांघलापुर, वरो।
विनवे नयनानन्द जगत मंगल करो॥36॥

(दोहा)

यह अपराध विमोचनी, सामायिक गुण माल।
जो नर पढ़ें त्रिकाल ही, कटे कर्म जंजाल॥37॥
नन्दो विरदो जगत में, अधिकारी भव जीव।
जिन्हें स्वपर हितकारिणी, उपजे सुमति सदीव॥38॥
वीत्यो काल अनादि ही, किये कर्म अघ भार।
चहुं गति सगरे हिडियो, कियो न जपतप सार॥39॥
एक घड़ी आधी घड़ी, एक पलक छिन एक।
जो सामायिक आदरे, छूटे पाप अनेक॥40॥

॥ वज्रदंत चक्रवर्ती का बारह मास ॥

जब वज्रदन्त चक्रवर्त्ती को वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब वे अपने पुत्रों को राज्य देना चाहते हैं परन्तु पुत्र भी परम वैराग्य युक्त होकर राज्य अंगीकार नहीं कर रहे हैं। जिनके परस्पर जबाब सवाल और वेराग्य भावना का यह बारह मासा नैनसुखदासजी कृत यहा लिखा जा रहा है :-

॥ मंगलाचरण ॥

(सवैया 31 सा)
बंदू मैं जिनन्द परमानन्द के कंद,
जगबंद विमलेन्दु जड़ तातप हरन को।
इन्द्र धरणेन्द्र गौतमादिक गणेन्द्र जाहि,
सेवैं राव-रंक भव सागर तरण कों।
निर्बन्ध निर्द्वन्द दीनबन्धु दयासिन्धु,
करैं उपदेश परमारथ करन को।
गावें नैनसुखदास वज्रदन्त बारहमास,
जासों मिट जाय भय जनम-मरन को॥[1]

• कथा •

(दोहा)
वज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मन लाय।
कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय॥

(सवैया)
बैठे वज्रदन्तराय अपनी सभा लगाय,
ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं।
इन्द्र के से भोग सार रानी छ्यानवे हजार,
पुत्र एक सहस्त्र महान गुणागार हैं।
जाके पुण्य प्रचण्ड से नये हैं बलवंत शत्रु,

1 - (पाठ भेद - मेटो भगवन्त मेरे जनम-मरन कूं॥)

हाथ जोड़ मान छोड़ सेवैं दरबार हैं।
ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली,
तामें देखो अलि अम्बु मरण भयकार है॥

• चक्रवर्ती का वैराग्य वर्णन •

(सवैया 31 सा)

अहो! यह भोग महा पाप को संयोग देखो,
डाली में कमल तामें भौंरा प्राण हरे है।
नासिका के हेतु भयो भोग में अचेत सारी,
रैन के कलाप में विलाप इन करे है।
हम तो हैं पांचों ही के भोगी भये जोगी नांहि,
विषय-कषायनि के जाल मांहि परे हैं।
जो न अब हित करूँ जाने कौन गति परूँ,
सुतन बुलाय के यों वच अनुसरे हैं॥

• चक्रवर्ती का वचन पुत्रों से •

(सवैया 31 सा)

अहो सुत! जग रीति देख के हमारी नीति,
भई है उदास बनोवास अनुसरेंगे।
राजभार शीस धरो परजा का हित करो,
हम कर्म शत्रुन की फौजन सों लरेंगे।
सुनत वचन तब कहत कुमार सब,

हम तो उगाल को न अंगीकार करेंगे।
आप बुरो जान छोड़ो हमें जगजाल बोड़ो,
तुमरे ही संग पंच महाव्रत धरेंगे॥

• पहला आसाढ़-मास •
• पिता वचन •

(चौपाई)
सुत असाढ़ आयो पावस काल।
सिर पर गरजत यम विकराल।
लेहु राज सुख करहु विनीत।
हम वन जाव बड़न की रीति॥

(गीता छंद)
जांय तप के हेत वन को, भोग तज संजम धरैं।
तज ग्रन्थ सब निर्ग्रन्थ हों, संसार सागर से तिरें।
ये ही हमारे मन बसी, तुम रहो धीरज धार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• चक्रवर्ती का वचन पुत्रों से •

(चौपाई)
पिता राज तुम कीनो वौन।
ताहि ग्रहण हम समरथ हौं न।

यह भौंरा भोगन की व्यथा।
प्रकट करत कर कंकन यथा॥

(गीता छंद)

यथा कर का कांगना, सन्मुख प्रकट नजरों परे।
त्यों ही पिता भौंरा निरख, भव भोग से मन थर हरे।
तुमने तो वन के वास ही को, सुख अंगीकृत किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया॥

• दूसरा श्रावण-मास •
• पिता वचन •

(चौपाई)

श्रावण पुत्र कठिन बनवास।
जल थल शीत पवन की त्रास।
जो नहिं पले साधु आचार।
तो मुनि भेष लजावे सार॥

(गीता छंद)

लाजे श्री मुनि वेष तातैं, देह का साधन करो।
सम्यक्त्व युत व्रत पंच में तुम, देशव्रत मन में धरो।
हिंसा असत् चोरी परिग्रह, अब्रह्मचर्य सुधार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रों का उत्तर •

(चौपाई)
पिता अंग यह हमरो नाहिं।
भूख प्यास पुद्गल परछाहिं।
पाय परीषह कबहुँ न भजैं।
धर संन्यास मरण तन तजैं॥

(गीता छंद)
संन्यास धर तन को तजें, नहिं डंश मशकन से डरे।
रहें नग्न तन वन खंड में, जहाँ मेघ मूसल जल परे।
तुम धन्य हो बड़भाग तज के, राज तप उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

• तीसरा भाद्रपद-मास •
• पिता के वचन •

(चौपाई)
भादौ में सुत उपजे रोग,
आवे याद महल के भोग।
जो प्रमाद वश आसन टले,
तो न दयाव्रत तुमसे पले॥

(गीता छंद)

जब दयाव्रत नाहीं पले, उपहास जग में विस्तरे।
अर्हंत अरु निर्ग्रन्थ को कहो, कौन फिर सरधा करै।
तातें करो मुनि दान पूजा, राज काज संभाल के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रो के वचन पिता से •

(चौपाई)

हम तज भोग चलेंगे साथ,
मिटे रोग भव भव के तात।
समता मन्दिर में पग धरें,
अनुभव अमृत सेवन करैं॥

(गीता छंद)

करैं अनुभव पान आतम, ध्यान वीणा कर धरैं।
आलाप मेघ मल्हार सो हं, सप्त भंगी स्वर भरें।
धृक्-धृक् पखावज भोगकों, सन्तोष मन में कर लिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया॥

• चौथा असौज-मास •

• पिता के वचन •

(चौपाई)

आसोज भोग तजे नहिं जांय।
भोगी जीवन को डसि खांय।
मोह लहर जियकी सुधि हरे।
ग्यारह गुण थानक चढ गिरें॥

(गीता छंद)

गिरि के जु थानक ग्यारवें से, आय मिथ्या भू परे।
बिन भाव की थिरता जगत में, चतुर्गति के दुःख भरें।
रहें द्रव्यलिंगी जगत में, बिन ज्ञान पौरुष हार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रो के वचन पिता से •

(चौपाई)

विषय विडार पिता तन कसें।
गिरि कन्दर निर्जन वन बसें।
महामंत्र को लखि परभाव।
भोग भुजंग न चाले घाव॥

(गीता छंद)

घाले न भोग भुजंग तब क्यों, मोह की लहिरां चढे।
परमाद तज परमात्मा, परकाश जिन आगम पढ़ैं।
फिर काल लब्धि उद्योत होय, सुहोय यों मन थिर किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया॥

• पांचवाँ कार्तिक-मास •
• पिता के वचन •

(चौपाई)
कातिक में सुत करे विहार।
कांटे कंकर चुभे अपार।
मारे दुष्ट खैंच के तीर।
फाटे उर थरहरे शरीर॥

(गीता छंद)
थरहरे सगरी देह अपने, हाथ काढ़त नहिं बने।
नहिं और काहू से कहें तब, देह की थिरता हने।
कोई खैंच बांधे खम्भ से, कोई खाय आंत निकाल के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रो के वचन पिता से •

(चौपाई)
पद-पद पुण्य धरा में चलें।
कांटे पाप सकल दलमले।
क्षमा ढाल तल धरे शरीर।
विफल करें दुष्टन के तीर॥

(गीता छंद)

कर दुष्ट जन के तीर निष्फल, दया कुंजर पर चढ़े।
तुम संग समता खड्ग लेकर, अष्ट कर्मन तें लड़ें।
धन धन्य यह दिन वार प्रभु! तुम, योग का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया॥

• पांचवाँ कार्तिक-मास •
• पिता के वचन •

(चौपाई)

कातिक में सुत करे विहार।
कांटे कंकर चुभे अपार।
मारे दुष्ट खैंच के तीर।
फाटे उर थरहरे शरीर॥

(गीता छंद)

थरहरे सगरी देह अपने, हाथ काढ़त नहिं बने।
नहिं और काहू से कहें तब, देह की थिरता हने।
कोई खैंच बांधे खम्भ से, कोई खाय आंत निकाल के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रो के वचन पिता से •

(चौपाई)

पद-पद पुण्य धरा में चलें।

कांटे पाप सकल दलमले।
क्षमा ढाल तल धरे शरीर।
विफल करें दुष्टन के तीर॥

• छठा अगहन-मास •
• पिता के वचन •

(चौपाई)
अगहन मुनि तटनी तट रहें।
ग्रीषम शैल शिखर दुःख सहें।
पुनि जब आवत पावस काल।
रहें साधुजन वन विकराल॥

(गीता छंद)
रहैं वन विकराल में जहाँ, सिंह स्याल सतावही।
कानों में बिच्छू बिल करें, अरु व्याल तन लिपटावही।
दे कष्ट प्रेत पिशाच आन, अंगार पाथर डार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रो के वचन पिता से •

(चौपाई)
हे प्रभु! बहुत बार दुःख सहे।
बिना केवली जाय न कहे।

शीत उष्ण नरकन के तात।
करत याद कम्पै सब गात॥

(गीता छंद)
गात कम्पै नर्क से, लहे शीत उष्ण अथायही।
जहाँ लाख योजन लोहपिण्ड सुहोय जल गल जायही।
असिपत्र बनके दुख सहे,परवश स्ववश तप ना किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

• सातवाँ पौष-मास •
• पिता के वचन •

(चौपाई)
पौष अर्थ अरुलेहु गयंद।
चौरासी लख लख सुख कन्द।
कोड़ि अठारह घोड़ा लेहु।
लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु॥

(गीता छंद)
लेहु हल लख कोड़ि षट खंड, भूमि अरु नव निधि बड़ी।
लेहु देश कोष विभूति हमरी, राशि रतनन की पड़ी।
धर देहूँ सिर पर छत्र तुमरे, नगर घोष उचारि के।
कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के॥

• पुत्रो के वचन पिता से •

(चौपाई)

अहो कृपानिधि! तुम परसाद।
भोगे भोग सबै मर्याद।
अब न भोग की हमको चाह।
भोगन में भूले शिव राह॥

(गीता छंद)

राह भूले मुक्ति की बहुबार, सुर गति संचरे।
जहाँ कल्पवृक्ष सुगन्ध सुन्दर, अप्सरा मन को हरे।
जो उदधि पी नहिं भया तिरपत, ओस पीके दिन जिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

• आठवाँ मंगसिर-मास •
• पिता के वचन •

(चौपाई)

माघ सधै न सुरनतें सोय।
भोग भूमियन तें नहिं होय।
हरिहर अरु प्रतिहरि से वीर।
संयमहतु धरें नहिं धीर॥

(गीता छंद)

संयम कूं नहिं धरें, धीरज नहिं टरें रणमें युद्ध सूं।
जो शत्रुगण गजराज को, दल मले पकड़ विरुद्ध सूं।
पुनि कोटिसिल मुद्गर समानी, देय फैंक उपार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रों के वचन पिता से •

(चौपाई)

बंध योग उद्यम नहिं करें।
एतो तात करम फल भरें।
बांधे पूरव भव गति जिसी।
भुगतें जीव जगत में तिसी॥

(गीता छंद)

जीव भुगतें कर्म फल कहो, कौन विधि संयम धरें।
जिन बंध जैसा बाधियो, तैसा ही सुख दुःख को भरें।
यों जान सब को बंध में, निर्बंध का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

• नौवाँ फाल्गुन-मास •

• पिता के वचन •

(चौपाई)
फाल्गुन चाले सीतल वायु।
थर थर कंपे सबकी काय।
तब भव बंध विदारणहार।
त्यागें मूढ़ महाव्रत सार॥

(गीता छंद)
धार परिग्रह व्रत विसारें, अग्नि चहुँ दिशि जारहीं।
करें मूढ़ शीत विनीत, दुर्गति गहें हाथ पसारहीं।
सो होंय प्रेत पिशाच भूतरु, ऊत शुम गति टारके।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रों के वचन पिता से •

(चौपाई)
हे मतिबंध कहा तुम कही।
प्रलय पवन की वेदन सही।
धारी मच्छ-कच्छ की काय।
सहे दुःख जलचर पर्याय॥

(गीता छंद)
पाय पशु पर्याय पर वश, रहे श्रृंग बधाय के।
जहाँ रोम रोम शरीर कम्पे, मरे तन तड़फाय के।
फिर गेर चाम उचेर श्वान, शिवान मिल श्रोणित पिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

• दसवाँ चैत-मास •
• पिता के वचन •

(चौपाई)
चैत्र लता मदनोदय होय।
ऋतु बसन्त में फूले सोय।
तिनकी इष्ट गन्ध के जोर।
जागे काम महा बल फोर॥

(गीता छंद)
फोर बल को काम जागे, लेय मन पुर छीन ही।
फिर ज्ञान परम निधान हरिके, करे तेरा तीन ही।
इनके न उतके तब रहै, गए कुगति दोऊ कर झार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

• पुत्रों के वचन पिता से •

(चौपाई)
ऋतु बसन्त वन में ना रहें।
भूमि मशान परीषह सहें।
जहाँ नहिं हरितकाय अंकूर।
उड़त निरन्तर अहनिशि धूर॥

(गीता छंद)

उडे वन की धूर निशि दिन, लगे कांकर आयके।
सुन शब्द प्रेत प्रचण्ड के वो, तब काम जाय पलायके।
मत कहो अब कछु और प्रभु, भव भोग से मन कंपिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

• ग्यारहवाँ वैशाख-मास •

• पिता के वचन •

(चौपाई)

मास बैसाख सुनत अरदास।
चक्री मन उपजो विश्वास।
अब बोलन को नाहीं ठौर।
मैं कहूँ और पुत्र कहें और॥

(गीता छंद)

और अब कछु मैं कहूँ नहि, रीति जग की कीजिये।
इक बार हमसे राज लेकर, चाहे जिसको दीजिये।
पोता था एक षटमास का, अभिषेक कर राजा कियो।
पितु संग सब जगजाल सेती, निकस वन मारग लियो॥

• पुत्रों के वचन पिता से •

(चौपाई)

उठे वज्रदन्त चक्रेश।

तीस सहस नृप तजि बल वेश।
एक हजार पुत्र बड़ भाग।
साठ सहस्त्र सती जग त्याग॥

(गीता छंद)
त्याग जगको ये चले सब, भोग तज ममता हरी।
सम भावकर तिहुं लोक के, जीवों से यों विनती करी॥
अहो! जेते जीव जग के, क्षमा हम पर कीजिये।
हम जैन दीक्षा लेत हैं, तुम वैर सब तज दीजियो॥

(गीता छंद)
बैर सब से हम तजा, अर्हंत का शरणा लिया।
श्री सिद्ध साधू की शरण, सर्वज्ञ के मत चित दिया।
यों भाष पिहिताश्रव गुरुन ढिग, जैन दीक्षा आदरी।
कर लौच तज के सोच, सबने ध्यान में दृढ़ता धरी॥

• बारहवाँ जेठ-मास •
• कवि वचन •

(चौपाई)
जेठ मास लू ताती चले।
सूखे सर कपिगण मद गले।
ग्रीषम काल शिखर के शीश।
धरयो आतापन योग मुनीश॥

(गीता छंद)

धर योग आतापन सुगुरु ढिग, शुक्ल ध्यान लगाइयो।
तिहुँ लोक भानु समान, केवलज्ञान तिन प्रगटाइयो।
धनि वज्रदन्त मुनीश जग तज, धर्म के सन्मुख भये।
निज काज अरु परकाज करके, समय में शिवपुर गये॥

• कवि वचन •

(चौपाई)

सम्यक्त्वादि सुगुण आधार।
भये निरंजन निर आकार।
आवागमन जलांजुलि दई।
सब जीवन की शुभ गति भई॥

(गीता छंद)

भई शुभगति सबन की जिन, शरण जिनपति की लई।
पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में, परमार्थ की सिद्धि भई।
जो पढ़े बारह मास भावन, भाय चित्त हुलसाय के।
तिनके हों मंगल नित नये, अरु विघ्न जांय पलाय के॥

(अन्तिम दोहा)

नित-नित नव मंगल बढैं, पढ़े जो यह गुणमाल।
सुर-नर के सुख भोगकर, पावैं मोक्ष रसाल॥

• • •

• देव स्तुति •

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥
पाये अनन्ते दु:ख अबतक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर॥
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहिं पानकर॥1॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥
रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा॥
प्रिय वचन की हो टेव, गुणीगण गान में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादन में भगै॥2॥

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारुँ वन जाकर॥
धरकर दिगम्बर रुप कब, अठ-बीस गुण पालन करुँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दस धारन करुँ॥
तप तपूं द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्त्रव परिहरुँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपुकों निर्जरुँ॥3॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥

कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ॥
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ॥4॥

• इति शुभम् •

• ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी कृत भजन •

उदय जब पाप आता है नाच नाना नचाता है।
ये वर्षों की कमाई को क्षणक भर में नशाता है ॥टेक॥
न भाई बंधु रिश्तेदार कोई काम आता है।
समझते मित्र थे जिसको वह आँखें अब दिखाता है ॥1॥
थी इज्जत आँख में जिसकी वह अब नफरत जताता है।
भरोसा जिस पै था भारी, धत्ता वो हो बताता है ॥2॥
जलीलो ख्वार दुनियां में, गजब ऐसा बनाता हैं।
कि आतम घात कर डालू यही वश दिल को भाता है ॥3॥
त्रिखंडी भूप को भी, जब कर्म आकर सताता है।
न खाने को मिले दाना, न जल पीने को पाता है ॥4॥
बुरा जिसमे हुआ तेरा, उसे दुश्मन बताता है।
निमित्त कारण फकत है वह क्यों उसपे रोश खाता है ॥5॥
यही कर्मों का फल सब है, न दुख का और दाता है।
जो समता से सहन करले, वही शिव सुख को पाता है ॥6॥

• • •

• भजन •
• भौंमराज जी चूड़ी वाल कृत •

जिन्हों के दर्श करने को, भव्य प्राणी तरसते थे,
हरषते नाम सुन सुनकर यही वे सूर्य सागर हैं ॥टेक॥
जगाया जैन जाति को, बताया सत्य शिव मारग।
मिटाई फूट आपस की, यही वे सूर्य सागर हैं ॥1॥
नहीं हे प्रेम भक्तों से, नहीं है द्वेष द्रोही से।
नजर है एकसी सब पै, यही वे सूर्य सागर हैं ॥2॥
सौम्य मुस्कान सूरत है, सरल मृदु बैन बोले है।
कपट अभिमान नहिं जिनके, यही वे सूर्यसागर हैं ॥3॥
सूर्य की ज्याति के आगे, छिपाते दोष को अपने।
दवी है चन्द्र की आभा, यही वे सूर्य सागर हैं ॥4॥
नहीं अटवी भयानक है, नहीं मरघट डरावन हैं।
नहीं अहि व्याघ्र की शंका, यही वे सूर्य सागर हैं ॥5॥
अनेकों को अजैनों को, लगाया जैन मारग में।
दिपाई जैन मुनि मुद्रा, यही वे सूर्य सागर हैं ॥6॥
सहे हिम धूप की बाधा, न डर तूफान वर्षा का।
अकंपन आत्मा जिनकी, यही वे सूर्यसागर हैं ॥7॥
श्रेष्ठ आदर्श साधु हैं, अचल चारित्र है जिनका।
आप मार्गानुगामी हैं, यही वे सूर्यसागर हैं ॥8॥
परीक्षा की कसौटी पर, मुनिपन को परख करके।
भौमने सिर नमाया है, यही वे सूर्यसागर हैं ॥9॥

• • •

version : 001
First electronic version : 10 दिसंबर 2022

पौष कृष्ण द्वितीया , वीर निर्वाण सम्वत् 2549
भगवान मल्लिनाथ के ज्ञान कल्याणक के शुभ अवसर पर

यह digital version पौस कृष्ण प्रतिपदा वीर निर्वाण सम्वत् २४७७ को ब्र. श्री लक्ष्मीचन्द जी वर्णी द्वारा प्रकाशित प्रति का बनाया गया है।

आचार्य श्री सूर्यसागर जी महाराज द्वारा संग्रहीत एवं प्रणीत यह "आत्मबोध मार्तंड" जी सहजता से हार्ड कॉपी के रूप में अब अधिक कहीं उपलब्ध देखने में नहीं आता है, यदि कोई भव्य जीव इस ग्रंथ को प्रिंट करवाकर साधर्मी जनों को उपलब्ध करा पावें तो जिनवाणी की रक्षा और जैन धर्म की प्रभावना में अमूल्य योगदान रहेगा।

"आत्मबोध मार्तंड " जी की यह डिजिटल प्रति बनाने में अत्यधिक सावधानी रखी गई है किंतु अज्ञान वश, प्रमाद वश एवं अत्यंत अल्प बुद्धि के धारक मूढ़ मति होने से हमसे टाइपिंग संबंधी त्रुटियां होना अवश्य सम्भावी हैं। ज्ञानी जन सुधार कर पढ़ें और हम पर क्षमा भाव धारण करें ऐसा करबद्ध निवेदन है। साथ ही किसी भी प्रकार की त्रुटि एवं सुझाव के लिए हमें निम्न ईमेल पर सूचित करने की कृपा करें

infinitejainism@gmail.com